ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

कामेश्वरनगर, दरभंगा

के मानविकी संकाय की हिंदी विषयक
पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तावित

शोध प्रारूप

प्रस्तावित विषय :

"हिन्दी दलित नाटक परंपरा का समाजशास्त्रीय अध्ययन"

शोध निर्देशक :

डा० अभिमन्यु कुमार
सहायक प्राध्यापक
सी० एम० कॉलेज, हिंदी-विभाग
ललित नारायण मिथिला
विश्वविद्यालय, दरभंगा

शोधार्थी :

उमेश कुमार साफी
हिन्दी-विभाग,
ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय,
दरभंगा
पैट क्रमांक- E2209041

1. प्रस्तावना–

हिंदी में नाटकों का प्रारंभ भारतेंदु हरिश्चंद्र से माना जाता है। उस काल के भारतेंदु हरिश्चंद्र तथा उनके समकालीन नाटककारों में लोक चेतना के विकास के लिए नाटकों की रचना की इसलिए उस समय की सामाजिक समस्याओं को नाटक में अभिव्यक्त होने का अच्छा अवसर मिला।

भारतीय साहित्य में नाटक को पंचम वेद माना गया है। नाटक ही एक ऐसी विधा है जो जनमानस पर सीधे चोट करने के साथ-साथ उसे प्रभावित भी करती है और दिशा भी देती हैं। नाटक साहित्य की शक्ति और सामर्थ्य को अपने आलेख में समाहित करने वाली वह विशिष्ट साहित्यिक विद्या है जिसकी अपार संभावनाओं का प्रमाण केवल दृश्य रूप में ही निहित रहता है। मूल आलेख में विद्यमान नाटय व्यंजन की अनंत संभावनाएं मंच पर जीवन धारण करती हैं शुरू से ही दलित समाज और नाट्य परंपरा का अत्यंत घनिष्ठा संबंध रहा है क्योंकि नाटक में काम करने वाले लगभग पात्रा दलित समाज से ही होते थे। दलित समाज और भारतीय नाट्य परंपरा के अंतर्संबंध को प्रकट करते हुए डॉक्टर एन सिंह लिखते हैं- भारत में नाट्य परंपरा बहुत पुरानी है। दलित समाज के लिए प्राचीन काल में प्रतिबंधित थी वेदों के पढ़ने और सुनने पर कठोर दंड की व्यवस्था थी जिसकी परछाई से परहेज किया जाता है जो इन तथाकथित सभ्यजनों के लिए अत्यंत अछूत ना जाने क्या-क्या है उसके लिए साहित्य और समाज का यह सांपत्य बचा माने रखता है जो समाज गिना ही नहीं जाता भला साहित्य से उसका क्या हित हो सकता है जो तथाकथित समाज चार वर्गों में आता ही नहीं बल्कि इससे उत्तर पांचवें वर्ण में आता है फिर कैसे कहा जा सकता हैं की पंचम वर्ण भी समाज का अंग है यदि ऐसा ही होता तो भरत मुनि को पंचम वेद नाट्यशास्त्र लिखने की आवश्यकता ही क्यों पड़ती मानो भारत भूमि भारत मुनी कह रहे हो-अपने वेद अपने पास रखो तुम क्यों हमें प्रतिबंधित करोगे। हम खुद ही इसे घास नहीं डालते। हमारा वेद या पंचम नाट्यशास्त्र है। 19वीं सदी के रूप में कुछ संवादों या गीतों के माध्यम से समाज में आर्य समाजियों ने छुआछूत के खिलाफ

प्रचार किया लेकिन इन नाटकों में वर्ण व्यवस्था को समाज की आवश्यकता के रूप में दर्शाया गया। इसके बाद भी नाटककारों द्वारा दलित समाज को आधार बनाकर दलित नाटक लिखने की परंपरा का सूत्रपात हुआ लेकिन यह नाटक प्रकाशित नहीं हो सके। इस कड़ी में सबसे पहले 20वी सदी के आदि हिंदू आंदोलन के प्रणेता स्वामी अछूतानंद हरिहर जी के चार नाटक दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें दो प्रकाशित नहीं हो पाए उनका पहला नाटक रामराज न्याय में रामायण के उपेक्षित और राम के शिकार पात्रा शंबूक की हत्या का वर्णन है लोग हजारों की संख्या में इकट्ठे होकर इस नाटक को देखा करते थे । उनके नाटक शंबूक मयानंद बलिदान परख- पद बाली छलन हिंदू शास्त्र और वाड्.मय के ऐसे पात्रों पर रचे गए हैं जिनके उत्पीड़न को स्वर्ण साहित्यकारों और समाज ने त्याग या बलिदान की संज्ञा देखकर स्वर्णों द्वारा दलित के शोषण तथा स्वर्ण पात्रों के छल को महिमामंडित करने का षड्यंत्र रचा था। इसके बाद हिंदी में तेजी से नाटक वह एकांकी लिखे गए दलित नाटककारों ने इतिहास को रामायण महाभारत तथा पौराणिक कथाओं की अपेक्षित पत्रों को आधार बनाकर नाटकों की रचना की। इसी श्रेणी में हिंदी दलित नाटकों में एन० आर० सागर के अंतिम अवरोध नाटक की सबसे पहले चर्चा की जा सकती है जिसमें दलित व आदिवासी चरित्रा बभ्रुवाहन का न्यायप्रिय युद्ध विरोधी व कमजोरी की सहायता करने वाला तथा महाभारत के पात्रा अर्जुन और श्री कृष्ण को छली व कपटी दिखाया गया है। यह नाटक हिंदी दलित साहित्य के लिए ही नहीं बल्कि हिंदी साहित्य के लिए एक उपलब्धि माना जाना चाहिए। इनके अलावा उनके लाजवंती व दूसरा पक्ष नामक दो अन्य नाटक - संग्रह भी दलित समस्याओं को आधार बनाकर लिखा गया।

दलित नाट्य साहित्य को सबसे अधिक नाटक श्री माता प्रसाद ने दिए हैं उनके नाटकों में धर्म के नाम पर धोखा अछूत का बेटा वीरांगना झलकारी बाई तरफ मुक्ति की वीरांगना ऊदादेवी पासी प्रतिशोध अंतहीन बेरिया तथा धर्म परिवर्तन आदि है । अछूत का बेटा नाटक में दहेज की बुराई को दूर करने के लिए और समाज में सद्भाव लाने के लिए अंतरजातीय विवाह का समर्थन

किया है। धर्म के नाम पर धोखा में पाखंड को धर्म मानकर ‘दलित समाज की आर्थिक शोषण को दर्शाया है।

ऐतिहासिक नाटकों की परंपरा में माताप्रसाद का अंतहीन बेड़ियां नाटक बहुत महत्वपूर्ण है। यह कई नाटकों को संयुक्त कर प्रस्तुत किया गया है जिसमें कुछ एकांकी नाटक है इस नाटक में राहुल सांकृत्यायन की वोल्गा से गंगा की शैली में 2000 ईसवी पूर्व से आज तक की भारत की सामाजिक और धार्मिक स्थिति को प्रदर्शित किया गया है इसमें लेखक ने उन घटनाओं और पात्रों को दर्शाया है जिनका संबंध वर्ण जातिए छुआछूत भेदभाव आदि से रहा है। नाटक में ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाकर कर मानवीय मूल्यों को नए तरीके से व्याख्या करने का प्रयास किया है। नाटक के प्रथम अंक के आठवें दृश्य में शंबूक द्वारा शिक्षा ग्रहण करने व तपस्या करने पर अयोध्या के राजा श्री रामचंद्र द्वारा उसकी हत्या किए जाने का दृश्य है। श्री रामचंद्र जी कहते हैं - “तू शुद्ध होकर अब अपनी सीमा से आगे बढ़ रहा है। तू मेरे कार्यों की आलोचना करने वाला कौन है धर्म शास्त्रों में शूद्रों द्वारा उपदेश देना शिक्षा देना वर्जित हैं। मैं धर्मशास्त्र के विरुद्ध कैसे काम करूं शास्त्रों के निर्माता और व्याख्याकार तो यही है । मैं भी इसी सीमा से बंदा हूं। इसलिए अपराध के बदले तुम्हे मृत्यु दंड देना ही उचित है” इस प्रकार लेखक ने श्रेष्ठ कहीं जाने वाली भारतीय सभ्यता और संस्कृति में श्री रामचंद्र द्वारा शूद्र शंबूक का वध किए जाने की घटना का अत्यंत मार्मिक वर्णन है। नाटककार ने अन्य स्थान पर शंबूक से कहलवाया है- “मेरा वध आप कर सकता हैं लेकिन इतिहास आपको क्षमा नहीं करेगा। आपके इस कृत्य पर हमेशा उंगली उठती रहेगी।” लेखक ने इस वक्तव्य के माध्यम से आधुनिक दलित चेतना की ओर इशारा किया है । जिसमें वर्तमान में दलित विमर्श की एक लहर उठ खड़ी हुई है । नाटककार नाटक में प्राचीन इतिहास को उठाते हुए बंगाल के दलित संघर्ष और बाबासाहेब अंबेडकर के मंडल कमीशन छत्रपति शाहू गांधी तारा सिंह बिहारी लाल हरित तथा जवाहरलाल नेहरू से संवाद के माध्यम से आधुनिक काल में हुए दलित संघर्षों

को सहज रूप में सामने रखते हैं। बाद मे वे कई गोष्ठी और समाज तोड़क द्सम्मेलनों व अन्य कार्यक्रमों में वर्तमान के दलित लेखकों और मित्रों के आपसी संवाद से भी दलित आंदोलन और बाबासाहेब अंबेडकर की विचारधारा को प्रस्तुत करते हैं।

वर्तमान समाज को साहित्य संस्कृति एवं कला का दौर कहे तो अतिश्योक्ति ना होगी। टेलीविजन सीरियल ने तो खास और आम सभी को बदल दिया हैं। नाटक कला तो तेजी के साथ समाज में उभरी हैं। जिसमें विशेष रूप से आम लोगों को उद्वेलित किया हैं और आंदोलन से जुड़ने के लिए प्रेरित किया हैं। दलित साहित्य में नाटक का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। प्रसिद्ध नाट्याकार बर्नार्ड शा ने एक बार नाटकों की उत्पति के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए कहा नाटक हमारी दो उद्गम प्रवृत्तियों के साथ पैदा हुआ हैं। नृत्य देखने की प्रवृत्ति और कहानी सुनने की प्रवृत्ति हिंदी में नाटक का लंबा इतिहास रहा है। यहां के रंग मंडल के अलग अलग रंग हुआ करते थे। इनमे वीर रस श्रृंगार रस एवं हास्यों की अधिकता रहती थी। हालांकि कुछ नाटक परिषदों तथा संस्थाओं के द्वारा पारसी कंपनियों के बाजारूपन के खिलाफ सुरुचि की रक्षा और प्रतिष्ठा हेतु कोशिशें जारी रहीं पर तत्कालीन समय में औसत नाटकों के स्वभाव का अगर गहराई से अध्ययन किया जाए तो उनका उद्देश्य या तो हंसना-हंसाना या फिर अश्लील संवादों के माध्यम से अभिजात वर्ग का मनोरंजन करना था। इसके अलावा कुछ नाटकों पर धर्म संस्कृति इतिहास के साथ देश-प्रेम का दबाव भी देखा जा सकता है।

नाटकों की प्रस्तुति राजा-महाराजाओं नवाबों के अतिरिक्त जमींदारों के मनोरंजन के लिए हुआ करती थी। ये अपनी नीतियों के अलावा मनोरंजन के लिनाट्यकारों को प्रोत्साहन करते थे कबीर चौरा में नाटक शाला का निर्माण करने वाले स्वयं भारतेंदु परिवार नगर के बड़े रईस थे। खास लोग नाटकारो को सहयोग भी दिया करते थे। दलित नाटकों के संबंध में ऐसा नहीं है। गांव में कोई खुला स्थान लिया जाता था। उसी स्थान पर तख्त या दरिया बिछाकर नाटक की शुरुआत होती थी।

उत्तरी भारत में लोकनाट्य बहुत पहले से होते रहे हैं जहां तक हिंदी लोक-नाट्य का प्रश्न है तो उत्तर प्रदेश के हापुड़ निवासी सेतु सिंह ने वर्ष 1821 में सपेरे नामक नाटक लिखा। इसके बाद दलित समाज के लोक-नाट्यकारों कि प्रथम श्रेणी में बख्शी दास और झंडू दास आते हैं। चढ़त तथा खेड़िया भांड़-भांडला बहुरूपिया स्वांग भारतीय लोक नाटकों में जिस वीर कथात्मक लोक नाट्यों ने महती भूमिका का निर्वहन किया उसमें आल्हा उदल को प्रमुख लोकनाट्य कहा जा सकता है। जहां लोकनाथ आल्हा का मध्य प्रदेश बिहार और उत्तर की ग्रामीण जनता में शौर्य और पराक्रम का मंत्र फूंकता रहा वहीं पर बिहार के मिथिला क्षेत्र में राजा सलहेश जो की वीर कथा आत्मक लोक नाट्य का प्रमुख रूप है। इस तरह देखा जाए तो लोकनाथ के दलित समाज से बहुत नजदीक के रिश्ते रह रहे। उनके सुख -दुख संवेदनाएं तथा भाषा शैली का सहजता से लोकनाट्य में प्रतिनिधित्व होता हैः लोकगीत हो या लोक- नाट्य शब्द दलित समाज की ही निधि है लोकनाट्य में पर्व निर्मित अवधारणाओं का प्रचुरता में समावेश रहा है। हम यह कह सकते हैं कि लोकनाट्य में व्यक्ति परक ना होकर समाज परक अधिक प्रदर्शित होता है।

इन पर स्वर्ण संस्कृति भी अधिक हावी रहा है इसलिए दलित समाज की संस्कृति अक्सर दब सी जाती है। महाराष्ट्र में बाबा साहब अंबेडकर के विचार को प्रसारित करने में जी साहित्यिक विधा का प्रयोग हुआ वह जलसा या तमाशा थी। डॉक्टर चंद्र कुमार वरठे के अनुसार तमाशा चुकी दलित और विशेषत: महाराष्ट्र के महारों के लहू में रचा-बसा है इसलिए इस इस विधा को अपनाया है। उनके विषय में समाज सुधार दलितों को राजनीतिक अधिकार सामान्यता दिलाने के साथ-साथ अंबेडकर का कीर्तिमान भी होता था।

दलित समाज के प्रथम नाटककार के रूप में किशन फागु बनसोडे का नाम लिया जाता है। इनके सत चोखा मेला के जीवन पर आधारित नाटक का लेखन काल वर्ष 1924 के इर्द-गिर्द माना जाता है ।या नाटक एक बार नहीं बल्कि अनेक बार खेला गया। सही मायने में मुक्त रंगमंच का

आविष्कार तत्कालीन जलशाकारों ने ही किया था। भारत में रेडियो के आने से रेडियो नाटक परंपरा विकसित हुई। रेडियो नाटकों की जहां तक विषय वस्तु की बात है।वह चाहे राष्ट्रीय चेतना प्रधान नाटक हो या सांस्कृतिक चेतनायुक्त नाटक उनमें इतिहास धर्म संस्कृति के सवाल .अधिक उठाए जाते थे" स्वयं नाटक लिखने वाला से लेकर प्रस्तुति देने वालों पर अधिकांश प्रभाव सनातनी लोगों का ही था। इस कारण विजयदशमी हो या दीपावली जन्माष्टमी रामनवमी आदि अवसरों पर ही नाट्य प्रसारित किए जाते थे बौद्ध कालीन नाटकों को भी ब्रह्मणिनी दृष्टि कौन से चित्रित किया जाता था। 13 जुलाई 1981 से 12 जनवरी 1999 के दरमियान का यदि हम रेडियो नाटकों का अवलोकन करें तो इस बारे में मोहनदास नैमिशराय लिखते हैं कि रेडियो नाटकों की हम लंबी सूची मिलती है इनमें 197 नाटकों के साथ उनके लेखकों के नाम प्रसारण तिथि तथा प्राप्ति स्थान का ब्योरा है। इसमें कई दलितनाट्यकारों का ब्योरा नहीं मिलता है। गिरिराज किशोर के नाटक घास का घोड़ा में भारतीय समाज के भीतर जाति भेद को अवश्य दिखाया गया है । शिव प्रसन्नदास के एकांकी में दलित समस्याओं के निदान के लिए सुधारात्मक कदम उठाया गया है। विष्णु प्रभाकर के नाटकों में दलित सवालों को उठाया गया है दरारों के द्वीप के लोग जाति के रूप में बंद हैं। रात चांद और कोहरे में भी जाति समस्या को कोहरा माना गया है। पर और किरण में लेखक जाती समस्या को फिर से उठता है। इसके अलावा कहीं भी ना दलित समस्या का चित्रण है और ना समाधान का प्रयास नैमिशराय जी का मानना है कि स्वर्णों की दुनिया के अलग रंग है। उनमें जाति का सबसे बड़ा रंग है। साहित्य भी इसका गवाह है इन सब के तहत स्वर्ण को रचना धर्मिता फलती- फूलती रही है लोक नाटकों की श्रृंखला में बिहार के भिखारी ठाकुर का जिक्र जरूरकरना चाहिए इनमें एक नहीं कई नाटक एवं गीत लिखते हैं जिनमें नशाखोरी के दुष्परिणाम धार्मिक आडंबर रूढ़िवादिता दहेज प्रथा विमल विवाह आदि समस्याओं को चित्रित किया है।

2. प्रस्तुत शोध की आवश्यकता–

21 वी सदी मैं दलित नाटक ने अपनी पहचान स्थापित करते हुए सामाजिक मूल्यों और साहित्य विमर्श में अपना पक्ष दृढ़ता के साथ रखा है और समाज को जोड़ने की पहल की है। दलित नाटक को लेकर आज भी हिंदी क्षेत्र में बहुत शोर मचा हुआ है। दलित समाज हासिए पर जीने वाला समाज रहा है जो कि वह भी समाज का एक बहुत बड़ा अंग है । डॉ आंबेडकर,ज्योतिबा फुले ने जो मराठी दलित नाटक के रूप में बिगुल फूंका और पूरे हिंदी साहित्य में एक आंदोलन की तरह उभरा और उसे एक आंदोलन की तरह विकसित किया। दलित साहित्य आदिवासी साहित्य स्त्री विमर्श प्रवासी विमर्श आदि में अलग-अलग करने की जरूरत नहीं है यह सभी विमर्श एक सिक्के के दो पहलु हैं और इनको एक पहचान की तरफ देखने की जरूरत है। दलित नाटक आंदोलन में अगर हमारा कोई प्रणेता है तो वह है परम पूज्य बाबा साहब डॉक्टर भीमराव अंबेडकर उनकी यश और कीर्ति जैसे-जैसे हिंदी क्षेत्र में फैली वैसे-वैसे दलित नाटक का सूरज उगता गया आजादी के 75 साल भी अगर हम देखे तो अभी भी दलितों की स्थिति सुधरी नहीं है। समाज में हर जगह

मनुवादी विचारधारा के लोग हैं जो दलितों की कमर तोड़ रहे हैं। अगर उदाहरण के तौर पर देखा जाए तो काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी के संस्कृत विभाग के सहायक अध्यापक फिरोज खान इसके साक्षात उदाहरण है। दलित नाटक जातिवादी मानसिकता में परिवर्तन के लिए किए जाने वाला नाटक है। यह एक विशाल समुदाय के सामाजिक सरोकार और अधिकार के लिए संघर्षरत नाटक हैं। इसलिए दलित कहानियों के यथार्थ को जानने और समझने के लिए सदियों से आज तक इतिहास को सामने रखते हुए भी आज भी प्रचलित सामाजिक भेदभाव और अन्याय के दंस को झेलने वालों के लिए उनकी समझ में इज्जत हो उनकी बेदखली को खत्म किया जाय। दलित नाट्यकारों का यथार्थ उनका भोगा हुआ यथार्थ है जो सदियों से मनुष्य को मनुष्य नहीं बल्कि पशु के काबिल ही समझ जाते।

3. प्रस्तुत शोध का महत्व–

मानवीय भावों का प्रदर्शन नाटक के द्वारा जितना प्रभावपूर्ण होता है, उतना किसी और माध्यम से नहीं होता। अमूर्त को मूर्त बनाने की क्षमता नाटक विधा में ही विद्यमान होती है। नाटक लिखे भी जाते हैं और उनका रंगमंच पर मंचन भी किया जाता है। नाटक सिर्फ मनोरंजन के लिए नहीं है, नाटक एक ऐसी विधा है जिससे मानव मन में परिवर्तन किया जा सकता है।

साहित्य में जब नाटक की बात करते हैं, तो पाते हैं कि नाटकों की परंपरा बहुत पुरानी है। नाटक का संबंध लोक से है। लेकिन बाद में नाटकों पर बुजुर्वा वर्ग का प्रभाव पड़ता है। नाटकों के उत्पत्ति के संबंध में यह कहा जाता है कि यह लोक कलाओं की देन है। कलाओं का जन्म और विकास लोक कलाओं से हुआ है और लोक कलाएँ खेतिहर, श्रमजीवी, संघर्षशील और उत्पादक वर्गों की उत्पाद हैं। सभ्यता के विकास में ये हाशिये पर छूट गए या धकेल दिए गए और शास्त्रों की रचना कर लोक कला को शास्त्रीय कला से अलगा दिया गया। तथाकथित मुख्यधारा के समाज ने हर कला के लिए न केवल शास्त्र रचा बल्कि उसे दैवीय स्वरूप भी दे दिया। क्या यह अजीब नहीं लगता कि उत्पादक व श्रमजीवी वर्ग अछूत व हीन हैं और भोक्ता वर्ग सवर्ण और श्रेष्ठ ? शारीरिक श्रम, संघर्ष और कर्म के प्रति जितनी हीनता व अनादर का दृष्टिकोण भारत में है संभवतः उतना किसी अन्य देश में नहीं होगा।

सवाल यह है कि दलित नाट्य परंपरा की शुरुआत कहाँ से मानी जाय? दलित नाट्य परंपरा का लिखित रूप बहुत पीछे से पाना मुश्किल है क्योंकि जिस समाज में पढ़े-लिखे लोगों की संख्या बहुत कम हो वैसे समाज में लिखित परंपरा के पुष्ट और स्पष्ट प्रमाण पाना कठिन है। लेकिन पिछले कुछ दिनों में हुए शोध से पता चलता है कि दलित नाट्य परंपरा बहुत पुरानी है। जब भी लोक की बात की जाती है, तो लोक में व्यक्तिगत से ज्यादा सामूहिकता की बात होती है। लोक नाट्य में सामूहिकता है जब हम समूह की बात करते है तो समूह में रहने वाले लोगों की परंपरा क्या है? लोक में खेतिहर मजदूर श्रमजीवी और संघर्षशील समाज है जिनकी परंपरा है लोक नाट्य।

जब दलित नाटक की बात की जाती है, तो हम देखते है कि दलितों का जीवन संघर्ष का जीवन है, श्रमजीवी का जीवन है जो लोक से जुड़ा हुआ है। यानि दलितों की संस्कृति लोक संस्कृति है लेकिन बाद के समय में उस लोक पर बुजुर्वा वर्ग का प्रभाव पड़ता है और लोक संस्कृति को शास्त्रीय बना दिया जाता है। दलित साहित्यकार अपनी परंपरा को लोक में देखता है और उस परंपरा को आगे बढ़ाता है। दलित साहित्य की सभी विधाओं पर अम्बेडकरवाद का प्रभाव है। उसी प्रकार दलित नाटकों पर भी अम्बेडकरवाद का प्रभाव दिखाई पड़ता है। अम्बेडकर ने अपने समाज के उत्थान के लिए शिक्षा को महत्त्व दिया है। शिक्षा ही ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा हम अपने

समाज को समझ सकते हैं। अम्बेडकर द्वारा दिया गया सूत्र वाक्य 'शिक्षा-संघर्ष-संगठन' तथा बुद्ध के 'अप्प दीपो भवः' का प्रभाव दलित साहित्य के सभी विधाओं पर पड़ा है। दलित साहित्य, दलित साहित्य के प्रेरणास्रोत डॉ. अम्बेडकर के विचारों को लेकर आगे बढ़ रहा है। दलित साहित्य एक प्रतिबद्ध साहित्य है। दलित साहित्य को मानवता का साहित्य कहा जाता है। वैसे साहित्य को हम दलित साहित्य नहीं कह सकते जिस पर अम्बेडकरवाद का प्रभाव नहीं है। जो साहित्य अम्बेडकरवाद के कसौटी पर खरा उतरता है, उसे हम दलित साहित्य मानते हैं। दलित नाटकों को भी हम अम्बेडकरवाद की कसौटी पर तौलते हुए इसका अध्ययन करेंगे।

नाटक की शुरुआत किसी भी संस्कृति में लोक-नाट्य के रूप में ही हुई। पारिभाषिक शब्दावली में जिसे पारंपरिक मंच कहा जाता है। मंच उस युग में न मनोरंजन था और न ही रस का संस्कार । वह एक सामूहिक इतिहास बोध और सामाजिक जिजीविषा का प्रतीक था। भारतीय रंगकर्मी यह मानते हैं कि भारतीय रंगमंच की शुरुआत और स्त्रोत के रूप में रामायण और महाभारत जैसे जिन दो महाकाव्यों का सबसे बड़ा योगदान है उनके रचयिता क्रमश: वाल्मीकि और व्यास दलित वर्ग से ही सम्बंधित थे। रामलीला और कृष्णलीला करने वाले लोगों में सबसे ज्यादा शूद्र हुआ करते थे, जिन्हें आज दलित कहा जाता है। दलितों में जिस तरह के मौखिक, क्षेत्रीय और

लोक-रंगमंच का विकास हुआ, वह तो पूरी तरह से दलित वर्ग पर आश्रित था। ये लोग नाट्य मंडलियों के साथ गाँव-गाँव घूम-घूमकर समाज के जमीनदार और धनी वर्ग का मनोरंजन किया करते थे। भाँड़, बेसारी, मदारी, अखाड़ेबाजी और बाद में नौटंकी कलाकार- ये सब समाज के उन्हीं वर्गों का प्रतिनिधित्व करते थे जिन्हें आज हम दलित के नाम से जानते हैं।

महाराष्ट्र से 1960 से दलित साहित्य आन्दोलन की शुरुआत मानी जाती है, उससे पहले 1888 में ज्योतिबा फुले ने 'तृतीय रत्न' नामक नाटक की रचना की जिसमें उन्होंने ब्राह्मणों की प्रतीकात्मक सत्ता को चुनौती दी। ये नाटक दलितों के शोषण का वर्णन करता है और शोषण की पूरी यांत्रिकी की भी विस्तार से चर्चा करता है। नाटक में एक धूर्त ब्राह्मण एक गर्भवती कुनवी स्त्री के घर आता है और ग्रह नक्षत्रों की उल्टी सीधी बातों के आधार पर उसे मूर्ख बनाकर पैसा ऐठने का काम करता है। इस नाटक की सबसे बड़ी खाशियत यह है कि इस नाटक में एक सूत्रधार है जो गलत होने वाले दृश्य से पहले बताता है कि ब्राह्मण अब कुनबी स्त्री को मूर्ख बनाने वाला है।

दलित साहित्य की तरह आधुनिक दलित रंगमंच की शुरुआत भी महाराष्ट्र से होती है। हिंदी के पहले दलित नाटककार अछूतानंद हरिहर हैं, उनके बाद दलित नाट्य सृजन-मंचन की एक लम्बी परंपरा हमें मिलती है। कुछ लिखित रक्षित है कुछ मंचित और लोकप्रचलित। इसलिए जब हम लिखित नाटकों की खोज करते हैं तो हमें मुख्यधारा से दूर गाँव-गिराव में असुरक्षा की हालत में मिलते हैं, जिनकी कोई खोज-खबर लेने वाला नहीं है।

डॉ. अम्बेडकर की राजनीतिक चेतना ने दलित जन-जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। डॉ. अम्बेडकर के समय से ही आधुनिक कहे जा सकने वाले नाटकों का सृजन शुरू हो गया था। हिंदी दलित नाट्य साहित्य में अम्बेडकर, गाँधी, और अछूतानंद तीनों की विचारधारा व विरासत हमें मिलती है। दलित नाटकों में अस्पृश्यता निवारण की सोच भी मिलती है। दलित अस्मिता, पहचान का सवाल डॉ. अम्बेडकर का प्रमुख एजेंडा रहा है। बीसवीं सदी के हिंदी दलित नाटकों में

यह भी मिलता है कि अछूतानंद हरिहर के आदिनिवासियों की एकता और आर्य ब्राह्मणों के अन्याय, वर्चस्व की मुखालफ़त को भी जगह मिली है।

दलित साहित्य में हिंदी के सबसे वरिष्ठ नाटककार माता प्रसाद हैं। उन्होंने अपने लेखन-चिंतन से दलित साहित्य को काफी समृद्ध किया है। वे अकेले ऐसे नाटककार हैं जो बीसवीं सदी से लेकर इक्कीसवीं सदी तक की निरंतर सृजन यात्रा करते हैं। माता प्रसाद ने 1973 से लेकर आज तक नाट्य लेखन किया है। उनका पहला नाटक 'अछूत का बेटा' 1973 में लिखा गया। यह नाटक तब लिखा गया, जब आधुनिक दलित साहित्य की दस्तक हिंदी में बहुत कम सुनाई दे रही थी, कोई महत्वपूर्ण चर्चा-परिचर्चा व स्वीकृति नहीं बन पाई थी।

हिंदी के दलित नाटकों को प्रकाश में लाने और दलित साहित्य को विस्तार रूप देने के लिए हिंदी दलित नाटकों का अध्ययन आवश्यक है।

शोध-कार्य के विश्लेषण एवं मूल्यांकन को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध-प्रबंध को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है।

पहले अध्याय में 'नाटक एवं रंगमंच: सैद्धांतिकी' पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय के अंतर्गत 'नाटक और समाज का अन्तःसंबंध', 'नाटक की उत्पत्ति और स्वरुप', 'नाटक के तत्त्व', 'हिंदी दलित नाटक का उद्भव और विकास', 'रंगमंच' और 'लोक नाट्यशैली एवं दलित रंगमंच का विकास' पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे अध्याय में दलित नाटककारों का परिचय है। इस अध्याय में तेरह नाटककारों के जीवन परिचय और उनके योगदान पर प्रकाश डाला गया है। तीसरे अध्याय 'पौराणिक और ऐतिहासिक नाटक' में दलित नाटकों की कथा और पात्रों का विश्लेषण किया गया है। इस अध्याय के अंतर्गत 'पौराणिक' और 'ऐतिहासिक' विषयों को आधार बनाकर नाटकों का विश्लेषण किया गया है। चौथे अध्याय 'सामाजिक और राजनैतिक नाटक' में दलितों की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए नाटकों में दलितों की सामाजिक

स्थिति कैसी है और दलित राजनीति के मुद्दे क्या हैं? इसका विश्लेषण किया गया है। पाचवें अध्याय 'धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक नाटक' में दलितों की धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर नाटकों का विश्लेषण किया गया है। छठवें अध्याय 'हिंदी के दलित नाटक: रंगमंचीय विशेषताएँ' के अंतर्गत 'रंग-निर्देशक', 'अभिनेता', 'दर्शकों की प्रतिक्रिया', 'रंग-सज्जा', 'ध्वनि चेतना', 'संवाद' और 'उद्देश्य' के माध्यम से दलित नाटकों के रंगमंचीयता का विश्लेषण किया गया है। सातवें अध्याय 'हिंदी के दलित नाटक: शिल्पगत विशेषताएँ' के अंतर्गत 'कथावस्तु', 'पात्र', 'संवाद', 'देशकाल और वातावरण' और 'नाटकों की भाषा-शैली' पर प्रकाश डाला गया है।

4. पूर्वकृत शोध कार्य–

विश्वविद्यालय हिंदी विभाग में प्राप्त शोध संदर्भ के विभिन्न करो के अवलोकन से ऐसा स्पष्ट होता है कि अब तक हिन्दी दलित नाटक परंपरा का समाजशास्त्रीय अध्ययन पर कोई शोध कार्य संपन्न नहीं हुआ है।

पत्र-पत्रिकाओं में छिटपुट रूप में इन पर कतिपय आलोचनात्मक टिप्पणियां मात्र मिलती है इसके अलावा में शोध गंगा, शोध गंगोत्री जैसी साइट पर भी अवलोकन किया तो वहां भी मुझे कुछ हासिल नहीं हुआ तो इन सब बातों से मुझे लगता है कि हिन्दी दलित नाटक परंपरा का समाजशास्त्रीय अध्ययन पर काम किया जा सकता है।

5. शोध की प्रविधि–

प्रस्तावित शोध प्रारूप 19वीं और 20वीं सदी के हिंदी नाटकों में दलित विमर्श जैसे प्रारूप के विश्लेषण के लिए आगमन और निगमन पद्धतियों का उपयोग किया जा सकेगा। निगमन पद्धतियों

से जहां संभावित अनुमान का तार्किक विश्लेषण संभव है वही आगमन पद्धति के द्वारा अन्वेषित तत्वों का विश्लेषण। निगमन पद्धति से प्रस्तुत शोध प्रारूप के दलित कहानियों की परंपराओं के वैज्ञानिक विश्लेषण में सहायता मिलेगी वहीं आगमन पद्धति से परंपरा उनकी सांस्कृतिक चेतना साहित्य दृष्टि एवं चेतना का विश्लेषण हो सकेगा।

6. शोध की परिकल्पना–

भारतीय दलित शताब्दियों से शोषण के शिकार हो रहे हैं। वर्तमान समय में उनकी इस स्थिति में परिवर्तन नहीं हो पाया है। भाषा संस्कृति आर्थिक कारण के संदर्भ में दलितों का भारतीय जन जीवन से संलिप्त रखने की नीति त्याग कर उन्हें अधिकाधिक भारतीय जनजीवन में एकरूपता होने के लिए अवसर प्रदान करना राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से आवश्यक है। 21वीं सदी के दलितों के जीवन की समस्याओं को विविध दृष्टिकोण से देखने की कोशिश अपने नाटक के माध्यम से किया है। वर्तमान समय में दलित जीवन और उसके संघर्ष को सजीवता के साथ चिन्हित करने वाले लेखकों का घोर अभाव है। इसका मुख्य कारण है लेखन और संपादकों का दलित जीवन को देखने के लिए दलितों के यथार्थ जीवन को नहीं भोगना । 21वीं सदी के हिंदी कथाकारों की दलितों की अवधारणा एवं चित्रित जीवन के द्वारा दलित जीवन के विविध भाव भंगिमाओं उनकी पीड़ा, वेदना, जीवन-संघर्ष पिछड़ेपन और उनके नैसर्गिक जीवन को समझने का पर्याप्त अवसर मिलेगा। इतना ही नहीं शताब्दियों से शोषण के शिकार हो रहे हैं दलितों के जीवन में आक्रोश असंतोष उनकी सांस्कृतिक चेतना एवं परंपराओं को समझने का अवसर भी प्राप्त होगा।

7. शोध अध्यायों का विभाजन–

पहला अध्याय	-	हिन्दी दलित नाटक परंपरा का समाजशास्त्रीय अध्ययन
दूसरा अध्याय	-	हिन्दी दलित नाटकों का वैशिष्ट्य
तीसरा अध्याय	-	हिन्दी दलित नाटक और रंगमंच का समाजशास्त्रीय विश्लेषण
चौथा अध्याय	-	हिन्दी के दलित नाटकों में अस्मिता के प्रश्न और सामाजिक जीवनधारा
पाँचवा अध्याय	-	हिन्दी के दलित नाटकों में अम्बेडकरवादी चेतना का स्वरूप और तत्कालीन सामाजिक परिवेश
छठा अध्याय	-	उपसंहार 1. शोध के निष्कर्ष और मौलिक मान्यताएँ 2. राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबंध का महत्व

परिशिष्ट

संदर्भ ग्रंथ की सूची

दलित लेखकों के साक्षात्कार

सन्दर्भ ग्रंथ सूची–

(क) आधार ग्रन्थ

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दो चेहरे (लघु नाटक), गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012
2. कँवल भारती, स्वामी अछूतानान्दजी 'हरिहर' संचयिता, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
3. डॉ. एन. सिंह, कठौती में गंगा, लोकवाणी संस्थान, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1998
4. डॉ. सुशीला टाकभौरे, नंगा सत्य, डॉ. शरद प्रकाशन, नागपुर, प्रथम संस्करण, 2007
5. डॉ. सुशीला टाकभौरे, रंग और व्यंग्य (नाटक संग्रह), शरद प्रकाशन, नागपुर, प्रथम संस्करण, 2006
6. पैरियार ललई सिंह/राम अवतार पाल, शम्बूक वध, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम (सम्यक) संस्करण, 2013
7. भारत भट्ट, भीम से बाबा साहेब अम्बेडकर, हस्ताक्षर प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004
8. माता प्रसाद 'मित्र', घुटन (बारह एकांकी और एक लघुनाटिका), सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012
9. माता प्रसाद, अंतहीन बेड़ियाँ (संयुक्त एकांकी नाटक), आतिश प्रकाशन, दिल्ली, 2000
10. माता प्रसाद, अछूत का बेटा, कर्मवीर भारती एडवोकेट, जौनपुर, 2000 11. माता प्रसाद, तड़प मुक्ति की, विकल्प, दिल्ली, 1999
12. माता प्रसाद, दलितों का दर्द, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011

13. माता प्रसाद, दिल्ली की गद्दी पर खुसरो भंगी, सम्यक प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2008

14. माता प्रसाद, धर्म के नाम पर धोखा, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय (सम्यक) संस्करण, 2013

15. माता प्रसाद, प्रतिशोध, ज्ञान भारती, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2000 16. माता प्रसाद, महादानी राजा बाली, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013

17. माता प्रसाद, वीरांगना झलकारी बाई, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1997

18. माता प्रसाद, संत शिरोमणि गुरु रविदास, आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण, 2003

19. मोहनदास नैमिशराय, हिंदी रेडियो नाटक, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004

20. रत्नकुमार साम्भरिया, उजास (दलित नाटक), लोकमित्र, दिल्ली, 2014 21. रत्नकुमार साम्भरिया, विमा, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2014

22. रूप नारायण सोनकर, समाज-द्रोही (नाट्य संग्रह), दलित साहित्य एवं सांकृतिक अकादमी, देहरादून, प्रथम संस्करण, 2007

23. रूपनारायण सोनकर, एक दलित डिप्टी कलेक्टर, दलित साहित्य एवं सांकृतिक अकादमी, देहरादून, प्रथम संस्करण, 2002

24. रूपनारायण सोनकर, छायावती, दलित साहित्य एवं सांकृतिक अकादमी, देहरादून, प्रथम संस्करण, 2003

25. रूपनारायण सोनकर, महानायक, दलित साहित्य एवं सांकृतिक अकादमी, देहरादून, प्रथम संस्करण, 2003

(ख) पत्र-पत्रिकाएं–

1. अपेक्षा, संपादक - तेजसिंह, अप्रैल - जून, 2009

2. कथा देश, संपादक - हरि नारायण, अप्रैल, 2007

3. दलित अस्मिता,संपादक - विमल थोरात, अक्टूबर, दिसंबर, 2016

4. दलित साहित्य, वार्षिकी, संपादक - जयप्रकाश कर्दम, 2013, 2014

5. युद्धरत आम आदमी, संपादक - रमणिका गुप्ता, दिसम्बर, 2004

6. रंगवार्ता, संपादक - अश्विनि कुमार पंकज, अगस्त- अक्टूबर, 2012

शोध निर्देशक

डॉ० अभिमन्यु कुमार

सहायक प्राध्यापक

हिन्दी-विभाग, सी०एम०

कॉलेज, दरभंगा

शोधार्थी

उमेश कुमार साफी

हिन्दी-विभाग,

ल०ना० मिथिला

विश्वविद्यालय, दरभंगा

पैट क्रमांक– E2209041